श्रीः

गजेन्द्रमोक्षः

भाषाटीकासहितः

प्रकाशक

भार्गव पुस्तकालय,
गायघाट, बनारस.

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीगजेन्द्रमोक्षः

भाषाटीकासहितः ।





व्या० आ० 'विद्यारत्न'

पं० माधवप्रसादव्यासेन कृतया

भाषाटीकया सहितस्तेनैव संशोधितश्च ।



प्रकाशक

भार्गव पुस्तकालय,

गायघाट, बनारस ।

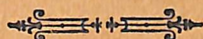
संवत् १९९५ वि०

मुद्रक
बाबू कैलासनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस ।

* श्रीः *

अथ गजेन्द्रमोक्षः ।

भाषाटीकासमेतः ।



शतानीक उवाच—

मया हि देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ।
श्रुताः संभूतयः सर्वा गदतस्तव सुव्रत ॥ १ ॥

शतानीक बोले—हे सुव्रत ! तुमसे मैंने अतुल तेजवाले देवन के देव विष्णु भगवान् के सम्पूर्ण ऐश्वर्य और गुणों को सुने ॥ १ ॥

यदि प्रसन्नो भगवननुग्राह्योऽस्मि वा यदि ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि नृणां दुःस्वप्ननाशनम् ॥ २ ॥

हे भगवन् ! तुम यदि प्रसन्न हो और मुझ पर अनुग्रह किया चाहते हो तो मनुष्यों के दुःस्वप्न (बुरे स्वप्नफल को) नष्टकारक (इतिहासादिक को) मैं सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

स्वप्नादिषु महाभाग दृश्यंते ये शुभाशुभाः ।
फलानि च प्रयच्छन्ति तदुक्तान्येव भार्गव ॥ ३ ॥

हे महाभाग ! स्वप्न आदिकों में जो शुभाशुभ दीखते हैं, हे भार्गव ! वैसा ही वे फल देते हैं ॥ ३ ॥

ताहृक्पुण्यं पवित्रं च नृणामतिशुभप्रदम् ।
दुष्टस्वप्नोपशमनं तन्मे विस्तरतो वद ॥ ४ ॥

वैसे ही पवित्र मनुष्यों को अत्यन्त शुभदायक (दुष्ट) स्वप्न के नाश करनेवाले (इतिहास आदि को) मेरे आगे विस्तार से कहो ॥ ४ ॥

शौनक उवाच—

इदमेव महाभाग पृष्टवांश्च पितामहम् ।
भीष्मं धर्मभृतां श्रेष्ठं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥

शौनकजी बोले-हे महाभाग ! इसी प्रश्न को धर्मधारियों में श्रेष्ठ भीष्मपितामहजी से धर्म के पुत्र युधिष्ठिर ने पूछा था ॥५॥

भीष्म उवाच—

जितन्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥ ६ ॥

भीष्मजी ने कहा-हे पुण्डरीकाक्ष ! हे विश्वभावन ! अर्थात् विश्व को उत्पन्न करनेवाले हृषीकेश, हे पूर्वज (सब से प्रथम उत्पन्न होनेवाले) तुम्हारी जय हो, तुम्हें नमस्कार है ॥ ६ ॥

आद्य पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरातनम् ।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्मन्व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥ ७ ॥

आद्यपुरुष ईशान (ईश्वर) पुरुहूत (यज्ञादिकों में बहुत बुलाना जिसका) पुरातन, ऋत अर्थात् सत्यस्वरूप, एकाक्षर (ओंकार) स्वरूप ब्रह्म, व्यक्ताव्यक्त अर्थात् अपने अवतार आदिकों से प्रगट और निजस्वरूप निराकार होने से अप्रकट रहनेवाले सनातन ॥ ७ ॥

असच्च सच्च यद्विश्वं नित्यं सदसतः परम् ।
परापराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम् ॥ ८ ॥

सत् असत् अर्थात् सूक्ष्म, स्थूल रूप से जो विश्व है सो और उस सत् असत् से भी परे, परापर अर्थात् ब्रह्मा आदि सब जीवों को रचनेवाले पुराण परम अविनाशी ॥ ८ ॥

माङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ।
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥ ९ ॥

मंगल करनेवाले, मंगलस्वरूप विष्णु (सब लोकों में व्याप्त रहनेवाले) अत्युत्तम, निष्पाप, पवित्र, चराचर के गुरु ऐसे हृषीकेश हरिनारायण को नमस्कार करके ॥ ९ ॥

प्रवक्ष्यामि मतं पुण्यं कृष्णद्वैपायनस्य च ।
येनोक्तेन श्रुतेनापि नश्यते सर्वपातकम् ॥ १० ॥

वेदव्यासजी के पवित्र मत को कहता हूँ, जिसके कहने सुनने से सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

नारायणसमो देवो न भूतो न भविष्यति ।
एतेन सत्यवाक्येन सर्वार्थान्साधयाम्यहम् ॥ ११ ॥

नारायण के समान देवता न हुए और न होंगे इसी सत्य वचन से मैं सम्पूर्ण प्रयोजनों को सिद्ध करता हूँ ॥ ११ ॥

किं तस्य बहुभिर्मंत्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः ।
नमो नारायणायेति मंत्रः सर्वार्थसाधकः ॥ १२ ॥

जो (नारायण का ध्यान करता है) उसको बहुत मन्त्रा से क्या है और उसको बहुत व्रतों से क्या है किन्तु 'ओं नमो नारायणाय' यही मन्त्र उसके संपूर्ण प्रयोजन को सिद्ध करनेवाला है ॥ १२ ॥

जज्ञे बहुज्ञं परमत्युदारं यं द्वीपमध्ये सुतमात्मवन्तम् ।
पराशराद्गंधवतीमहर्षेस्तस्मैनमोऽज्ञानतमोनुदाय॥१३॥

गंधवती देवी पराशरजी महर्षि के प्रकाश से द्वीप के मध्य में जिस परम उदार बहुज्ञ (बहुत जाननेवाले) आत्मज्ञानी पुत्र को जनती भई अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करनेवाले उसको नमस्कार है ॥ १३ ॥

नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ।
यस्य प्रसादाद्वक्ष्यामि नारायणकथामिमाम् ॥ १४ ॥

जिसकी कृपा से नारायण की इस कथा को मैं कहूगा तिस भगवान् अतुल तेजवाले वेदव्यासजी को नमस्कार है ॥ १४ ॥

वैशंपायनमासीनं पुराणार्थविचक्षणम् ।
इममर्थं स राजर्षिः पृष्टवाञ्जनमेजयः ॥ १५ ॥

राजऋषि जनमेजय ने पुराणों के अर्थ को जाननेवाले बैठे हुए वैशंपायनजी से इसही अर्थ को पूछे थे ॥ १५ ॥

जनमेजय उवाच—

किं जपन्मुच्यते पापात्किं जपन्सुखमश्नुते ।
दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं श्रोतुमिच्छामि मानद ॥ १६ ॥

जनमेजय बोले—हे मानद ! (मानदायी) कौन सा जप करने से मनुष्य पाप से छूटता है, और क्या जपता हुआ सुख को प्राप्त होता है, मैं दुष्ट स्वप्नफल को नष्ट करनेवाले पवित्र (इतिहास को) सुनना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

वैशंपायन उवाच—

देवव्रतं महाप्राज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम् ।
विनयेनोपसंगम्य पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे देवव्रत ! (देवताओं के समान व्रतवाले) महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रवेत्ता ऐसे भीष्मपितामहजी के समीप प्राप्त होके युधिष्ठिर ने विनय से पूछा ॥ १७ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

दुःस्वप्नदर्शनं घोरमवेक्ष्य भरतर्षभ ।
प्रयतः किं जपेज्जाप्यं विबुधः किमनुस्मरेत् ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे भरतर्षभ ! पण्डित जन घोर दुःस्वप्न देख कर सावधान होके किस मन्त्र को जपे ? और क्या स्मरण करे ? ॥ १८ ॥

कस्य कुर्यान्नमस्कारं प्रातरुत्थाय मानवः ।
किं च ध्यायेत सततं कः पूज्यो वा भवेत्सदा ॥१९॥

मनुष्य प्रातःकाल उठकर किसको नमस्कार करे ? निरन्तर किसका ध्यान करे ? और सदा कौन पूज्य है ? ॥ १९ ॥

पितामहप्रसादेन बुद्धिभेदो भवेन्न मे ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि नो वदताम्वर ॥ २० ॥

हे भीष्मपितामहजी ! हे वदताम्वर (कहनेवालों में श्रेष्ठ) आपके प्रसाद से जिसमें मेरी बुद्धि भेद नहीं हो सो मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ आप मुझसे कहो ॥ २० ॥

भीष्म उवाच–

शृणु राजन्महाबाहो वर्णयिष्ये हि शान्तिदम् ।
दुःस्वप्नदर्शने जाप्यं यद्धै नित्यं समाहितम् ॥ २१ ॥

भीष्मजी बोले—हे राजन् ! हे महाबाहो ! जो दुःस्वप्न-दर्शन में सावधान हुए जो द्वारा जपने योग्य शांतिदायक (मन्त्र) है तिसको सुनो ॥ २१ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गजेंन्द्रमोक्षणं पुण्यं कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ २२ ॥

जिनमें पुरातन गजेंद्रमोक्ष नामक अर्थात् जिसमें संकट से गजेंद्र को छुड़ाया है ऐसे उत्तम कर्मवाले श्रीकृष्ण के पवित्र इतिहास को कहते हैं ॥ २२ ॥

सर्वरत्नमयः श्रीमांस्त्रिकूटो नाम पर्वतः ।
सुतः पर्वतराजस्य सुमेरोर्भास्करद्युतेः ॥ २३ ॥

संपूर्ण रत्न से संयुक्त श्रीमान् त्रिकूटनामक पर्वत था जो सूर्य के समान कांतिवाले पर्वतराज सुमेरु का पुत्र था ॥ २३ ॥

क्षीरोदजलवीच्यग्रैर्धौतामलशिलातलः ।
उत्थितः सागरं भित्वा देवर्षिगणसेवितः ॥ २४ ॥

वहाँ क्षीरसागर के जल की लहरों के अग्रभाग से धोई हुई स्वच्छ शिलातलवाला तथा देवर्षिगणों से सेवित वह पर्वत समुद्र को भेद करके ऊपर को उठा हुआ है ॥ २४ ॥

अप्सरोभिः परिवृतः श्रीमान्प्रस्रवणाकुलः ।
गंधर्वैः किन्नरैर्यक्षैः सिद्धचारणपन्नगैः ॥ २५ ॥

अप्सराओं से संयुक्त शोभावाला, झरनों से संयुक्त, गंधर्व, किन्नर, यक्ष, सिद्ध, चारण, पन्नग, दिव्यसर्प आदि से ॥ २५ ॥

मृगैः शाखामृगैः सिंहैर्मातंगैश्च सदामदैः ।
वृकद्वीपिवराहाद्यैर्वृतगात्रो विराजते ॥ २६ ॥

मृग, वानर, सिंह, मदोन्मत्त हस्ती, भेड़िया, शूकर इत्यादिकों से संयुक्त वह पर्वत विराजमान है ॥ २६ ॥

पुन्नागैः कर्णिकारैश्च सुबिल्वैर्दिव्यपाटलैः ।
चूतनिम्बकदम्बैश्च चंदनागुरुचम्पकैः ॥ २७ ॥

और पुन्नाग, तथा काठचम्पा, वृक्ष, और सुन्दर बेलपत्र, दिव्य पाटलवृक्ष, आम, नीब, कदंब, चंदन, अगर, चम्पावृक्ष॥२७॥

शालैस्तालैस्तमालैश्च तरुभिश्चार्जुनैस्तथा ।
बकुलैः कुंदपुष्पैश्च सरलैर्देवदारुभिः ॥ २८ ॥

शालवृक्ष, ताडवृक्ष, तमालवृक्षों से तथा अर्जुन (कोहवृक्ष) बकुल और कुन्दपुष्प सरलवृक्ष देवदारु आदि से ॥ २८ ॥

मंदारकुसुमैश्चान्यैः पारिजातैश्च सर्वतः ।
एवं बहुविधैर्वृक्षैः शोभितः समलंकृतः ॥ २९ ॥

और मन्दार (देववृक्ष) के पुष्पों से तथा कल्पवृक्षों से संयुक्त हैं ऐसे बहुत प्रकार के वृक्षों से सब तरफ से शोभित और परिपूर्ण है ॥ २९ ॥

नानाधात्वंकितैः शृंगैः प्रस्रवद्भिः समंततः ।
जीवजीवकसंघुष्टं चकोरशिखिनादितम् ॥ ३० ॥

अनेक प्रकार की धातुओं से चिह्नित, तथा जल के झरने वाले शिखरों से सब तरफ से शोभित है जीवक पक्षियों से कूजित और मयूरों से शब्दित है ॥ ३० ॥

पद्मरागसमप्रख्यं ज्वालापुञ्जमिवोत्थितम् ।
तस्यैकं कांचनं शृंगं सेवते यद्दिवाकरः ॥ ३१ ॥

और पुखराज के समान कांतिवाला अग्नि के समूह की तरह उठा हुआ उस पर्वत का एक शिखर सुवर्ण का है जिसको सूर्य सेवता है ॥ ३१ ॥

नानापुष्पैः समाकीर्णं नानागंधैः समाकुलम् ।
द्वितीयं राजतं श्रृगं सेवते यन्निशाकरः ॥ ३२ ॥

अनेक प्रकार के पुष्पों से और अनेक प्रकार की सुगन्धियों से संयुक्त दूसरा शिखर चन्द्रमा सेवता है ॥ ३२ ॥

पांडुरांबुदसंकाशं तुषाराचलसन्निभम् ।
वज्रेन्द्रनीलवैडूर्यं तेजोभिर्भासयन्नभः ॥ ३३ ॥

वह पर्वत सफेद मेघ के (बादल के) समान कान्तिवाला तथा बर्फ के समान कान्तिवाला है, और वज्र, इन्द्रनीलमणि, वैडूर्यमणि, आदि तेजों से आकाश को प्रकाशित करता हुआ॥३३॥

तृतीयं ब्रह्मसदनं प्रकृष्टं श्रृङ्गमुत्तमम् ।
अत्यद्भुतं महासानुं विचित्रसरसद्रुमम् ॥ ३४ ॥

तीसरा शिखर ब्रह्माजी का स्थान और अत्यन्त उत्तम है अत्यन्त अद्भुत महान् सानु अर्थात् शिखर की समान भूमिवाला है तथा सरस उत्तम वृक्षोंवाला है ॥ ३४ ॥

विद्याधरपुरस्तत्र हेमप्राकारतोरणम् ।
तरुणादित्यसंकाशं तप्तकांचनसन्निभम् ॥ ३५ ॥

वहाँ सुवर्ण की खाई कोट और तोरणवाला विद्याधरों का पुर है तेजयुक्त सूर्य के समान कांतिवाला और तपाये हुए सुवर्ण के समान कांतिवाला है ॥ ३५ ॥

बालस्फटिकसोपानं वैडूर्यसुशिलातलम् ।
जांबूनदमहद्दिव्यं नानारत्नोपशोभितम् ॥ ३६ ॥

उत्तम मणियों की पैडी है, वैडूर्यमणि की शिला है, अनेक रत्नों से शोभित महान् जाम्बूनद सुवर्ण के समान है ॥ ३६ ॥

अप्सरोगणसंकीर्णं सिद्धगंधर्वसेवितम् ।
पद्मरागसमप्रख्यं तारागणसमन्वितम् ॥ ३७ ॥

वह अप्सरागणों से संयुक्त और सिद्ध गंधर्वों से सेवित और पद्मरागमणि के समान शोभावाला और तारागणों से युक्त है ॥ ३७ ॥

नैतत्कृतघ्नाः पश्यंति न नृशंसा न नास्तिकाः ।
नातप्ततपसो लोके ये च पापकृतो नराः ॥ ३८ ॥

ऐसे उस स्थान को कृतघ्न और हिंसा करनेवाले और नास्तिक तथा तपस्या न करनेवाले पापिष्ठ लोग नहीं देखते ॥ ३८ ॥

नानाराधितगोविन्दाः शैलं पश्यन्ति ते नराः ।
तस्य सानुमतः पृष्ठे सरः काञ्चनपङ्कजम् ॥ ३९ ॥

जिन्होंने गोविन्द भगवान् की आराधना नहीं की हो, ऐसे मनुष्य इस पर्वत को नहीं देखते इस पर्वत के पृष्ठ पर सुवर्ण कमलों से युक्त ॥ ३९ ॥

कारण्डवसमाकीर्णं राजहंसोपशोभितम् ।
मत्तभ्रमरसंघुष्टं चकोरशिखिनादितम् ॥ ४० ॥

और कारण्डव पक्षियों से व्याप्त तथा हंसों से युक्त और

मत्तभ्रमरों से सेवित तथा चकवा और मयूरों के शब्दों से निनादित ॥ ४० ॥

कमलोत्पलकह्लारपुण्डरीकोपशोभितम् ।
कुमुदैः शतपत्रैश्च काञ्चनं समलंकृतम् ॥ ४१ ॥

और अनेक प्रकार के सूर्यविकासी और चन्द्रविकासी कमलों से शोभायमान ऐसा मनोहर सरोवर था ॥ ४१ ॥

पत्रैर्मरकतप्रख्यैः पुष्पैः काञ्चनसन्निभैः ।
गुल्मैः कीचकवेणूनां समन्तात्परिवारितम् ॥ ४२ ॥

वहाँ मरकत मणि के समान कान्तिवाले पत्तों से युक्त तथा सुवर्ण के समान वर्णवाले पुष्पों से युक्त और चारों तरफ छिद्रोंवाले बाजते हुए बाँस संकीर्ण हो रहे हैं ॥ ४२ ॥

अत्यद्भुतं महास्थानं विचित्रशिखराकुलम् ।
शतयोजनविस्तीर्णं दशयोजनमायतम् ॥ ४३ ॥

वहाँ विचित्र शिखरों से संयुक्त अत्यन्त अद्भुत एक महास्थान है जो सौ योजन (४०० कोश) लम्बा है दश योजन (४० कोश चौड़ा) है ॥ ४३ ॥

पञ्चयोजनमूर्द्धानं सर एतत्प्रमाणतः ।
हिमखण्डोदकं राजन्सुस्वादममृतोपमम् ॥ ४४ ॥

पाँच योजन ऊँचा (ऐसे प्रमाण का) सरोवर है । हे

राजन् ! वहाँ बर्फ का गला हुआ पानी अमृत के समान सुन्दर और सुस्वादु है ॥ ४४ ॥

त्रैलोक्ये दृष्टपूर्वं च यत्तत्सरमनुत्तमम् ।
सुप्रसन्नं सरो दिव्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ४५ ॥

ऐसा अत्युत्तम सरोवर पहले त्रिलोकी में नहीं देखा गया है सुन्दर, स्वच्छ, दिव्य, यह सरोवर देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ४५ ॥

खातेन द्विगुणं प्रोक्तं शरद्यौरिव निर्मलम् ।
उपहाराय देवानां सिद्धाद्यर्जितपङ्कजम् ॥ ४६ ॥

ऊँचाई से दूना गहरा है शरदऋतु के आकाश की तरह निर्मल है जिस सरोवर में सिद्ध आदि लोग देवताओं की पूजा के वास्ते कमल के पुष्पों को संचित करते हैं ॥ ४६ ॥

तस्मिन्सरसि दुष्टात्मा विरूपोन्तर्जलाशयः ।
आसीद्ग्राहो गजेन्द्राणां दुराधर्षो महाबलः ॥ ४७ ॥

उस सरोवर में दुष्ट स्वभाववाला, विरूप जल के भीतर रहनेवाला, (हस्तियों को) दुराधर्ष (नहीं सहने योग्य) महाबली गजेन्द्र का ग्राह होता भया ॥ ४७ ॥

अथ दन्तोज्ज्वलमुखः कदाचिद्गजयूथपः ।
अजगाम तृषाक्रांतः करेणुपरिवारितः ॥ ४८ ॥

इसके अनन्तर किसी समय में दाँतों करके उज्ज्वल मुख

वाला, तृषा से पीड़ित हुआ, हस्तिनियों से संयुक्त हस्तिसमूहों का पति (एक हस्ती) आया ॥ ४८ ॥

मदस्रावी जलाकांक्षी पादचारीव पर्वतः ।
वासयन्मदगन्धेन महानैरावतोपमः ॥ ४९ ॥

मद झरानेवाला, जल की इच्छावाला, मद की सुगन्धि फैलाता हुआ महान् ऐरावत हस्ती के समान और मानों पैरों से चलके पर्वत आया हो ऐसा विशाल ॥ ४९ ॥

गजो ह्यंजनसंकाशो मदाच्चलितलोचनः ।
तृषितः पातुकामोऽसाववतीर्णो महाह्रदे ॥ ५० ॥

अञ्जन के समान कान्तिवाला, मद से नेत्रों को चलायमान करता हुआ ऐसा वह पियासा हस्ती जल पीने की इच्छा से उस महान् सरोवर में उतरा ॥ ५० ॥

पिबतस्तस्य तत्तोयं ग्राहः समुपपद्यत ।
सुलीनः पंकजवने यूथमध्यगतः करी ॥ ५१ ॥

उस सरोवर का जल पीते हुए उसको ग्राह होता भया फिर यूथ (हस्तिसमूह) के मध्य में प्राप्त हुआ वह हस्ती कमलवन में लीन भया, लुकने लगा ॥ ५१ ॥

गृहीतस्तेन रौद्रेण ग्राहेणाऽव्यक्तमूर्त्तिना ।
पश्यंतीनां करेणूनां क्रोशंतीनां च दारुणम् ॥ ५२ ॥

तब उस भयंकर अप्रकट मूर्तिवाले ग्राह ने हस्तिनियों के

देखते हुए और दारुण पुकारते हुए उस हाथी को पकड़ लिया ॥ ५२ ॥

नीयते पंकजवने ग्राहेणातिबलीयसा ।
गजश्चाकर्षते तीरं ग्राहश्चाकर्षते जलम् ॥ ५३ ॥

अत्यन्त बलवाला ग्राह कमलवन में खींचने लगा । और हाथी किनारे की तरफ खींचता है ॥ ५३ ॥

तयोरासीन्महद्युद्धं दिव्यवर्षसहस्रकम् ।
दारुणैः संयुतः पाशैर्निष्प्रयत्नगतिः कृतः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार उन दोनों का महान् युद्ध दिव्य हजार वर्षों तक होता रहा दारुण पाश से संयुक्त हुआ वह हस्ती कुछ चेष्टा न कर सके ऐसा कर दिया गया ॥ ५४ ॥

वेष्टयमानः स घोरैस्तु पाशैर्नागो दृढैस्तथा ।
विस्फूर्य च यथाशक्त्या विक्रोशस्तु महारवान् ॥५५॥

घोर दृढ़पाश से बँधा हुआ वह हस्ती शक्ति के अनुसार चेष्टा स्फुरण करके चिक्कार मारता भया ॥ ५५ ॥

व्यथितः स निरुत्साहो गृहीतो घोरकर्मणा ।
परमापदमापन्नो मनसाऽचिंतयद्धरिम् ॥ ५६ ॥

पीड़ित हुआ, उत्साहरहित घोरकर्मवाले ग्राह से पकड़ा हुआ परम विपत्ति को प्राप्त हुआ वह हस्ती अपने मन से हरि भगवान की शरण जाता भया ॥ ५६ ॥

स तु नागवरः श्रीमान्नारायणपरायणः ।
तमेव शरणं देवं गतः सर्वात्मना तदा ॥ ५७ ॥

तब श्रीमान् हस्तिवर नारायण को परम आश्रय मान करके उस सर्वात्मा देव की शरण में प्राप्त भया ॥ ५७ ॥

एकाग्रो निगृहीतात्मा विशुद्धेनान्तरात्मना ।
जन्मजन्मान्तराभ्यासाद्भक्तिमान्गरुडध्वजे ॥ ५८ ॥

विशुद्ध मन से एकाग्र हो, मन की वृत्तियों को वश में कर जन्म जन्म के अभ्यास से गरुडध्वज भगवान् में भक्तिमान् होता भया ॥ ५८ ॥

नान्यं देवं महादेवात्पूजयामास केशवात् ।
दिग्बाहुं स्वर्गमूर्द्धानं भूपादं गगनोदरम् ॥ ५९ ॥

महान् देव केशव भगवान् से अन्य किसी देव को नहीं पूजता भया । दिशा, बाहु, स्वर्ग, मस्तक, भूमिपाद, आकाश उदरवाले ॥ ५९ ॥

आदित्यचन्द्रनयनमनन्तं विश्वतोमुखम् ।
भूतात्मानं च मेघाभं शंखचक्रगदाधरम् ॥ ६० ॥

सूर्य चन्द्रमा के नेत्रोंवाले अनन्त सब तरफ मुखवाले भूतात्मा मेघ के समान कान्तिवाले शंख चक्र गदाधारी ॥ ६० ॥

सहस्रशुभनामानमादिदेवमजं विभुम् ।
प्रगृह्य पुष्कराग्रेण कांचनं कमलोत्तमम् ॥ ६१ ॥

सुन्दर सहस्रनामवाले आदिदेव अजन्मा ऐश्वर्यवान् नारायण को पूजता भया, कमल दण्डी के अग्रभाग से उत्तम सुनहरे कमल पुष्प को ग्रहण करके ॥ ६१ ॥

नैवेद्यं मनसा ध्यात्वा पूजां कृत्वा जनार्दने ।
आपाद्विमोक्षमन्विच्छन्गजः स्तोत्रमुदीरयत् ॥ ६२ ॥

मन से नैवेद्य का ध्यान कर जनार्दन भगवान् की पूजा करके विपत्ति से छूटने की इच्छा करता हुआ वह हस्ती स्तोत्र करता भया ॥ ६२ ॥

गजेन्द्र उवाच ।

नमो मूलप्रकृतये अजिताय महात्मने ।
अनाश्रयाय देवाय निःस्पृहाय नमोनमः ॥ ६३ ॥

गजेन्द्र बोला—मूलप्रकृतिस्वरूप अजित महात्मा को नमस्कार है अनाश्रय देव अर्थात् किसी के आश्रय से नहीं रहनेवाले निःस्पृह इच्छारहित को नमस्कार है ॥ ६३ ॥

नम आद्याय बीजाय आर्षेयाय महात्मने ।
अनन्तराय चैकाय अव्यक्ताय नमो नमः ॥ ६४ ॥

आद्य बीजस्वरूप, आर्षेय महात्मा अन्तर [मध्य] रहित एक अव्यक्त किसी प्रकार प्रकट न होने वाले देव को नमस्कार है ॥ ६४ ॥

नमो गुह्याय गूढाय गुणाय गुणवार्तिने ।
अतर्क्यायाप्रमेयाय अतुलाय नमोनमः ॥ ६५ ॥

गुह्य, गूढ़स्वरूप, गुणस्वरूप, गुणों में वर्तनेवाले अतर्क्य जो (किसी प्रकार विचार नहीं किये जावें) अप्रमेय (किसी प्रकार प्रमाण नहीं किये जावें) अतुल ऐसे नारायण को नमस्कार है ॥ ६५ ॥

नमः शिवाय शान्ताय निश्चिताय यशस्विने ।
सनातनाय पूर्वाय पुराणाय नमोनमः ॥ ६६ ॥

शिवस्वरूप, शान्तस्वरूप, चिन्तारहित, यशस्वी, सनातन, पूर्व सब से पहले रहनेवाले पुराण पुरुष को नमस्कार है नमस्कार है ॥ ६६ ॥

नमो जगत्प्रतिष्ठाय गोविन्दाय नमोनमः ।
नमोऽस्तु पद्मनाभाय सांख्ययोगोद्भवाय च ॥ ६७ ॥

जगत् की स्थिति करनेवाले गोविन्द को नमस्कार है । पद्मनाभ और सांख्ययोग शास्त्रों से जानने योग्य को नमस्कार है ॥ ६७ ॥

विश्वेश्वराय देवाय शिवाय हरये नमः ।
नमोस्तु तस्मै देवाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ ६८ ॥

विश्वेश्वर देव शिव हरि को नमस्कार है निर्गुण और गुणात्मक उस देव को नमस्कार है ॥ ६८ ॥

नमो देवाधिदेवाय स्वभावाय नमोनमः ।
नारायणाय विश्वाय देवानां परमात्मने ॥ ६९ ॥

देवताओं के अधिपति देव आप ही उत्पन्न करनेवाले

विश्वस्वरूप नारायण को देवताओं के परमात्मा को नमस्कार है ॥ ६९ ॥

नमोनमः कारणवामनाय
नारायणायामितविक्रमाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ ७० ॥

कारणरूपी वामन सूक्ष्म को नमस्कार है, अतुल पराक्रम वाले नारायण श्रीशार्ङ्ग, धनुष, चक्र, गदा धारण करनेवाले उस पुरुषोत्तम देव को नमस्कार है ॥ ७० ॥

गुह्याय वेदनिलयाय महोदराय
सिंहाय दैत्यनिधनाय चतुर्भुजाय ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिचारणसंस्तुताय
देवोत्तमाय वरदाय नमोऽच्युताय ॥ ७१ ॥

गुह्यस्वरूप वेद के स्थान महान् उदरवाले सिंहस्वरूप दैत्यों को नष्ट करनेवाले, चतुर्भुज स्वरूपवाले, ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, मुनि, चारणादि से संस्तुत देवताओं में उत्तम वरदायी अच्युत अर्थात् जिसका अपने स्थान से पड़ना नहीं होता है ऐसे देव को नमस्कार है ॥ ७१ ॥

नागेन्द्रदेहशयनासनसुप्रियाय
गोक्षीरहेमशुकनीलघनोपमाय ।

पीतांबराय मधुकैटभनाशनाय
विश्वाय चारुमुकुटाय नमोऽक्षराय ॥७२॥

शेषनाग शय्या पर आसन करने में सुन्दर हितवाले गौ के दूध समान सुवर्ण समान (कान्तिवाले) तोता और नील मेघ के समान उपमावाले अर्थात् श्वेत, पीत, हरित, नील इन सब वर्णवाले पीताम्बरधारी मधुकैटभ दैत्य को नष्ट करनेवाले विस्वरूप सुन्दर मुकुट वाले अक्षर (क्षीणता आदि विकार-रहित) को नमस्कार है ॥ ७२ ॥

नाभिप्रजातकमलस्थचतुर्मुखाय
क्षीरोदकार्णवनिकेतनशोभनाय ।
नानाविचित्रमुकुटाङ्गदभूषणाय
योगीश्वराय पुरुषाय नमो वराय ॥७३॥

जिसकी नाभि से उत्पन्न हुए कमल में स्थित होनेवाले चतुर्मुख ब्रह्माजी होते हैं (ऐसे) क्षीरसागर स्थान में शोभित होनेवाले अनेक प्रकार के विचित्र मुकुट और बाजूबन्द आदि आभूषणोंवाले योगीश्वर पुरुष, उत्तम, श्रेष्ठ भगवान् को नमस्कार है ॥ ७३ ॥

भक्तिप्रियाय वरदीप्तिसुदर्शनाय
फुल्लारविन्दविपुलायतलोचनाय ।
देवेन्द्रविघ्नशमनोद्यतपौरुषाय
नारायणाय विरजाय नमोऽच्युताय ॥७४॥

भक्ति को प्रिय माननेवाले उत्तम कान्तियुक्त सुदर्शन चक्र वाले फूले हुए कमलसमान विस्तृत नेत्रोंवाले देवेन्द्र के विघ्न की शान्ति के वास्ते उद्यत होके पुरुषार्थ करने वाले (रागादि) रजोगुणरहित नारायण अच्युत भगवान् को नमस्कार है ॥७४॥

नारायणाय नरलोकपरायणाय
कालाय कालकमलायतलोचनाय ।
रामाय रावणविनाशकृतोद्यमाय
धीराय धीरतिलकाय महोदराय ॥७५॥

नारायण नरलोक में परायण कालस्वरूप कालरूपी कमल के समान नेत्रोंवाले रावण को विनाश करनेवाले रामचन्द्रजी, धीरजवाल धीरजवालों में शिरोमणि महान् उदरवाले ऐसे भगवान् को नमस्कार है ॥ ७५ ॥

पद्मासनाय मणिकुण्डलभूषणाय
कंसान्तकाय शिशुपालविनाशनाय ।
गोवर्धनाय सुरशत्रुनिकृन्तनाय
दामोदराय वरदाय नमो वराय ॥७६॥

कमलासन भगवान् और मणिकुण्डल आभूषणवाले, कंस को मारनेवाले, शिशुपाल का विनाश करनेवाले, गोवर्द्धनरूप देवताओं के शत्रु (दैत्यों) को मारनेवाले दामोदर वर देनेवाले अत्यन्त श्रेष्ठ भगवान् को नमस्कार है ॥ ७६ ॥

ब्रह्मायनाय त्रिदशाधिपाय लोकायनायात्मभवोद्भवाय ।
नारायणायार्तिविनाशनाय महावराहाय नमस्करोमि ॥७७॥

ब्रह्माजी के निवासस्थान देवता और स्वर्ग के पति, लोकों के निवासस्थान, आप ही उत्पन्न होनेवाले, पीड़ा को नाश करने वाले, महावराह अवतारधारी भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥ ७७ ॥

कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्यरूपं नारायणं कारणमादिदेवम् ।
युगान्तशेषं पुरुषं पुराणं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥७८॥

कूटस्थ [परमात्मारूप] अव्यक्त अचिन्त्यरूप नारायण कारणस्वरूप आदिदेव प्रलयकाल में शेष रहनेवाले पुराणपुरुष उस वासुदेव को मैं शरण हूँ ॥ ७८ ॥

अदृश्यमच्छेद्यमनंतमव्ययं महर्षयो ब्रह्ममयं सनातनम् ।
वदन्ति यं वै पुरुषं पुराणं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥७९॥

अदृश्य, अच्छेद्य, अनन्त, अविनाशी, जिसको महर्षिजन सनातन ब्रह्ममय पुराण पुरुष कहते हैं उस वासुदेव को मैं शरण हूँ ॥ ७९ ॥

उत्तिष्ठतस्तस्य जलारुरुक्षोर्महावराहस्य महीं विदार्य ।
वितन्वतो वेदमयं शरीरं लोकान्तरस्था मुनयो वदंति ॥८०॥

पृथ्वी को उखाड़ के जल के ऊपर आरूढ़ होने की इच्छा वाले उठते हुए वराहजी को मुनिजन वेदमय शरीर लोकान्तरस्थ कहते हैं ॥ ८० ॥

योगेश्वरं चारुविचित्रमौलिर्ज्ञेयं समक्षं प्रकृतेः परस्तात् ।
क्षेत्रज्ञमात्मप्रभवं वरेण्यं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥८१॥

योगीश्वर सुन्दर विचित्र मुकुटवाले प्रत्यक्ष प्रकृति से पर क्षेत्रज्ञ आप उत्पन्न वरेण्य [प्रधानपुरुष] उस वासुदेव को मैं शरण हूँ ॥ ८१ ॥

कार्यक्रियाकारणमप्रमेयं
हिरण्यबाहुं वरपद्मनाभम् ॥
महाबलं वेदनिधिं सुरोत्तमं
व्रजामि विष्णुं शरणं जनार्दनम् ॥८२॥

कार्य क्रिया कारण स्वरूप हैं, अप्रमेय हैं, सुवर्णवत् तेजवाले भुजावाले उत्तम पद्मनाभ महाबलवाले वेदनिधि देवताओं में श्रेष्ठ जर्नादन अर्थात् शत्रुजन को नष्ट करनेवाले विष्णु भगवान् को मैं शरण हूँ ॥ ८२ ॥

किरीटकेयूरमहार्हनिष्कै-
रत्यंतमालंकृतसर्वगात्रम् ।
पीताम्बरं काञ्चनभक्तिचित्रं
मालाधरं केशवमभ्युपैमि ॥ ८३ ॥

मुकुट, बाजूबंद आदि उत्तम आभूषण आदि से विभूषित किया है संपूर्ण शरीर जिन्होंने ऐसे और पीताम्बरधारी भक्ति से विचित्रित सुवर्ण की माला को धारण करनेवाले केशव भगवान् को मैं शरण हूँ ॥ ८३ ॥

भवोद्भवं वेदविदां वरिष्ठ-
मादित्यचन्द्राग्निवसुप्रभावम् ।
योगात्मकं सांख्यविदां वरिष्ठं
प्रभुं प्रपद्येऽच्युतमात्मवंतम् ॥ ८४ ॥

संसार को उत्पन्न करनेवाले वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वसु आदि में तेजवृद्धि करनेवाले, योगात्मक सांख्यवेत्ताओं में श्रेष्ठ प्रभु अच्युत, आत्मवंत भगवान् को मैं शरण हूँ ॥ ८४ ॥

यदक्षरं ब्रह्म वदंति सर्वगं
निशम्य यं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ।
तमीश्वरं युक्तमनुत्तमैर्गुणैः
सनातनं लोकगुरुं स्मरामि ॥ ८५ ॥

जिसको अक्षर (निर्विकार अविनाशी) सर्वगत ब्रह्म कहते हैं और जिसको सुनके विचार के यह जीव मृत्यु से छूट जाता है, सर्वोत्तम गुणों से युक्त हुए उस ईश्वर को लोक के गुरु का मैं स्मरण करता हूँ ॥ ८५ ॥

श्रीवत्सांकं महादेवं वंदे गुह्यमनुत्तमम् ।
प्रपद्ये सूक्ष्ममचलं वरेण्यमभयप्रदम् ॥ ८६ ॥

श्रीवत्स चिह्नवाले महान् देव, गुरु गुह्य, अनुत्तम सूक्ष्म अचल प्रधान पुरुष अभय देनेवाले भगवान् को मैं शरण हूँ ॥८६॥

नमस्तस्मै वराहाय लीलयोद्धरते महीम् ।
खुरमध्यगतो यस्य मेरुः खुरखुरायते ॥ ८७ ॥

जो अपनी लीला करके पृथ्वी को उठा लेता है और जिसके पैर में (खुर) में प्राप्त हुआ सुमेरु पर्वत खुर खुर होता है अर्थात् खुर में अत्यन्त सूक्ष्म लीन हो जाता है उन वराहजी को नमस्कार है ॥ ८७

प्रभवं सर्वभूतानां निर्गुणं परमेश्वरम् ।
प्रपद्ये मुक्तसंगानां यतीनां परमां गतिम् ॥ ८८ ॥

जो सब भूतों को उत्पन्न करनेवाला निर्गुण परमेश्वर है और सङ्गरहित यतिजनों की परमगति है उनकी मैं शरण हूँ ॥८८॥

भगवंतं गुणाध्यक्षमक्षरं परमं पदम् ।
शरण्यं शरणार्तानां प्रपद्ये भक्तवत्सलम् ॥ ८९ ॥

भगवन्त ऐश्वर्यवाले गुणों के अधिष्ठाता अक्षर परम पद शरणागतों के रक्षक भक्तों पर दया करनेवाले ऐसे भगवान् की मैं शरण हूँ ॥ ८९ ॥

त्रिविक्रमं त्रिलोकेशं सर्वेषां प्रपितामहम् ।
योगात्मानं महात्मानं प्रपद्येऽहं जनार्दनम् ॥ ९० ॥

त्रिविक्रम [तीनों लोकों में वा त्रिगुणों में जिसका पादविक्षेप [प्रचार] है त्रिलोकी के स्वामी सब के प्रपितामह, (बड़े दादे) योगात्मा, ऐसे जनार्दन भगवान् की मैं शरण हूँ ॥ ९० ॥

आदिदेवमजं विष्णुं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ।
नारायणमणीयांसं प्रपद्ये ब्राह्मणप्रियम् ॥ ९१ ॥

आदिदेव अजन्मा विष्णु कहिये सब लोक में व्याप्त होके रहनेवाले व्यक्त अर्थात् अवतार आदि से प्रकट अव्यक्त कहिये इन्द्रियों से अग्राह्य सनातन नारायण अत्यन्त सूक्ष्म ब्राह्मणों के प्रिय ऐसे ईश्वर की मैं शरण हूँ ॥ ९१ ॥

अकूपाराय देवाय नमः सर्वमहात्मने ।
प्रपद्ये देवदेवेशमणीयांसं मणेर्यथा ॥ ९२ ॥

समुद्रस्वरूप देव को, सर्व महात्मा को नमस्कार है । देव देवेश सूक्ष्मों से भी अत्यन्त सूक्ष्म प्रभु की मैं शरण हूँ ॥ ९२ ॥

लोकत्रयाय चैकाय परतः परमात्मने ।
नमः सर्वत्र शिरसे अनन्ताय महात्मने ॥ ९३ ॥

त्रिलोकीस्वरूप एक परम परमात्मा को नमस्कार है । सब जगह शिरोंवाले अनन्त महात्मा को नमस्कार है ॥ ९३ ॥

तमेव परमं देवमृषयो वेदपारगाः ।
कीर्त्तयन्ति च यं सर्वे ब्रह्मादीनां परायणम् ॥ ९४ ॥

जो ब्रह्मादिकों का परम निवासस्थान है उस परम देव को वेदपारगामी सबही ऋषि कीर्तन करते हैं ॥ ९४ ॥

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामभयङ्कर ।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम् ॥ ९५ ॥

हे पुण्डरीकाक्ष ! हे भक्तों को अभय करनेवाले सुब्रह्मण्य देव तुमको नमस्कार है । शरणागत हुए मेरी रक्षा करो ॥९५॥

तावद्भवति मे दुःखं चिन्ता संसारसागरे ।
यावत्कमलपत्राक्षं न स्मरामि जनार्दनम् ॥ ९६ ॥

चिन्तायुक्त संसारसागर में मुझे तब तक दुःख होता है जब तक कमलपत्र समान नेत्रोंवाले जनार्दन भगवान् को मैं स्मरण नहीं करता हूँ ॥ ९६ ॥

भीष्म उवाच—

भक्तिं तस्य तु सञ्चिन्त्य नागस्यामोघसंस्तवम् ।
प्रीतिमानभवद्राजञ्छ्रुत्वा चक्रगदाधरः ॥ ९७ ॥

भीष्मपितामहजी कहते हैं हे राजन् ! उस हस्ती के अमोघ स्तोत्र को और भक्ति को चिन्तन करके चक्र और गदाधारी विष्णुभगवान् प्रसन्न होते भये ॥ ९७ ॥

आरुह्य गरुडं विष्णुराजगाम सुरोत्तमः ।
सान्निध्यं कल्पयामास तस्मिन्सरसि लोकधृक् ॥ ९८ ॥

लोक को धारण करनेवाले देवोत्तम विष्णु भगवान् गरुड़ पर चढ़ के उस सरोवर के समीप प्राप्त होते भये ॥ ९८ ॥

ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं च तं ग्राहं च जलाशयात् ।
उज्जहाराप्रमेयात्मा तरसा मधुसूदनः ॥ ९९ ॥

अतुल शरीरवाले मधुसूदन भगवान् ग्राह से पकड़े हुए

उस हस्ती को और उस ग्राह को उस सरोवर से बाहर निकालते भये ॥ ९९ ॥

जलस्थं दारयामास ग्राहं चक्रेण माधवः ।
मोचयामास नागेंद्रं पापेभ्यः शरणागतम् ॥ १०० ॥

माधव भगवान् जल में स्थित हुए ग्राह को अपने सुदर्शन चक्र से काटते भये और शरणागत हुए नागेन्द्र को पापों से छुड़ाते भये ॥ १०० ॥

स हि देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः ।
ग्राहत्वमगमत्कृष्णाद्वधं प्राप्य दिवं गतः ।
इदमप्यपरं गुह्यं राजन् पुण्यतमं शृणु ॥ १ ॥

वह उत्तम हूहूनामक गंधर्व पहले देवलऋषि के शाप से ग्राह हो गया था सो श्रीकृष्ण से मृत्यु को प्राप्त होके स्वर्ग पहुँचा, हे राजन्! यह और भी अत्यन्त पवित्र गुह्य सुनो ॥१॥

युधिष्ठिर उवाच—

कथं शापोद्भवं नाम गंधर्वाणां महात्मनाम् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण पितामह ॥ २ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामहजी! महात्मा गंधर्वों को कैसे शाप होता भया यह मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

हाहा हूहूरिति ख्यातौ गीतवाद्यविशारदौ ।
इति तौ शापितौ तेन देवलेन महात्मना ॥ ३ ॥

भीष्मजी कहने लगे—हाहा हूहू नाम के प्रसिद्ध गंधर्व गाने बजाने में निपुण भये इन दोनों को महात्मा देवलऋषि शाप देते भये ॥ ३ ॥

उर्वशी मेनका रम्भा तथा चान्येऽप्सरोगणाः ।
शक्रस्य पुरतो राजन्नृत्यन्ते ताः सुमध्यमाः ॥ ४ ॥

हे राजन्! उर्वशी, मेनका, रम्भा ये तथा अन्य बहुत सी उत्तम अप्सराएँ होती भई वे सब इन्द्र के आगे नाचती थीं ॥४॥

ततस्तौ गायमानौ तु गंधर्वौ राजसद्मनि ।
अन्योन्यं चक्रतुः स्पर्द्धां शक्रस्य पुरतस्तदा ॥ ५ ॥

फिर वे दोनों गंधर्व राजसभा में इन्द्र के आगे हुए आपस में स्पर्द्धा [ईर्षा] करते भये ॥ ५ ॥

आवयोरुभयोर्मध्ये कः श्रेष्ठो गीतवाद्ययोः ।
तं वदस्व सुरश्रेष्ठ ज्ञात्वा गीतस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

उन्होंने कहा कि, हमारे दोनों में कौन सा गाने बजाने में श्रेष्ठ है। हे इन्द्र! इस बात को गीत के लक्षण को विचार के आप कहो ॥ ६ ॥

गंधर्वयोर्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच शतक्रतुः ।
युवयोर्गीतवाद्येषु विशेषो नोपलक्ष्यते ॥ ७ ॥

गन्धर्वों के वचन को सुनके इन्द्र प्रतिवचन बोला कि, तुम्हारे गाने बजाने में कुछ विशेष हमको नहीं दिखाता ॥ ७ ॥

एक एव मुनिश्रेष्ठो देवलो नाम नामतः ।
युवयोः संशयच्छेत्ता भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥

किन्तु एक देवल नाम से प्रसिद्ध मुनिश्रेष्ठ है वह तुम्हारे संदेह को दूर करेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ८ ॥

ततस्तु तौ शक्रवचो निशम्य
प्रणम्य राजञ्छिरसा सुरेश्वरम् ।
गतौ सुहृष्टौ जयकांक्षिणौ तौ
यत्राश्रमे तिष्ठति स द्विजाग्र्यः ॥९॥

हे राजन् ! पीछे वे दोनों इन्द्र के वचन को सुनके शिर से प्रणाम कर जय की [जीतने की] इच्छावाले दोनों प्रसन्न होकर जहाँ वह ऋषि था उस आश्रम में जाते भये ॥ ९ ॥

ततो दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठं देवलं शंसितव्रतम् ।
अभिवाद्यं महात्मानं प्रोचतुः पार्श्वसंस्थितौ ॥ १० ॥

फिर तीव्र व्रतवाले मुनिश्रेष्ठ देवल को देख उस महात्मा को विधिपूर्वक प्रणाम कर बराबर में स्थित होके बोलते भये ॥१०॥

शक्रेण प्रेषितौ देव त्वत्समीपे द्विजोत्तम ।
एकस्य च जयं देहि यत्ते मनसि रोचते ॥ ११ ॥

हे द्विजोत्तम ! हम दोनों को तुम्हारे पास इन्द्र ने भेजा है सो जो तुम्हारे मन में रुचे उस एक को जय दो ॥ ११ ॥

पृथक् चरंतौ गायंतौ रुचिरं मधुरस्वरम् ।
न किंचिद्वदते वाक्यं मुनिर्मौनस्य धारणात् ॥ १२ ॥

ऐसे कहके अलग २ विचरते हुए व दोनों गन्धर्व सुन्दर मधुरस्वर में गाते भये तब मौन धारण होने से मुनि कुछ नहीं बोले ॥ १२ ॥

शृण्वन्नपि पदं तेषां न किञ्चिद्वदते मुनिः ।
तदा तौ कुपितौ तस्य देवलस्य महात्मनः ॥१३॥

उनके पद को सुनते हुए भी मुनि कुछ नहीं कहते हैं तब व दोनों महात्मा देवल पर क्रोधित होते भये ॥ १३ ॥

ऊचतुस्तौ तदा वाक्यं गन्धर्वौ कालनोदितौ ।
मूढोऽयं नाभिजानाति निश्चयं वाद्यगीतयोः ॥ १४ ॥

काल से प्रेरे हुए वे गन्धर्व बोले कि यह मूर्ख है गाने बजाने के सिद्धान्त को नहीं जानता ॥ १४ ॥

निशम्यैतद्वचस्तेषां गन्धर्वाणां मदान्वितम् ।
क्रोधादुत्थाय विप्रेन्द्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥

गन्धर्वों का ऐसा मद भरा वचन सुनके वे मुनि क्रोध से उठ के यह बचन बोले ॥ १५ ॥

एष हूहूर्दुरात्मा तु ग्राहत्वं यातु मूढधीः ।
त्वमेव गजराजस्तु भवस्व गिरिगह्वरे ॥ १६ ॥

यह हूहू दुष्टात्मा तो ग्राह बने और तू मूर्ख पर्वत की गुफा हस्ती हो ॥ १६ ॥

ततस्तौ शापितौ तेन देवलेन महात्मना ।
प्रणम्य शिरसा विप्रं गंधर्वाविदमूचतुः ॥ १७ ॥

तब वे दोनों देवल महात्मा से शाप पाकर पीछे उस मुनि को प्रणाम करके यह बोले ॥ १७ ॥

भूमंडलगतौ ह्यावां प्रसादं कुरु सत्तम ।
निश्चयं वद विप्रेंद्र येन शापाद्विमुच्यतः ॥ १८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! पृथ्वी लोक में गये हुए हम पर दया करो । हे मुनिश्रेष्ठ ! जिससे हम शाप से छूटें ऐसा कोई निश्चय कहो ॥ १८ ॥

ततस्तौ पुरतो दृष्ट्वा उभौ शापभयार्दितौ ।
प्रत्युवाच मुनिश्रेष्ठो गन्धर्वौ तौ भयान्वितौ ॥१९॥

फिर शाप के भय से पीड़ित हुए उन दोनों को आगे खड़े देखकर भक्तियुक्त गन्धर्वों को मुनिश्रेष्ठ कहने लगा ॥ १९ ॥

मेरुपृष्ठे सरो रम्यं बहुवृक्षसमाकुलम् ।
नानापाक्षिनिनादाढ्यं द्वितीय इव सागरः ॥ २० ॥

सुमेरु पर्वत की शिखा पर रमणीक बहुत वृक्षों से संयुक्त अनेक पक्षियों के शब्द से युक्त मानों दूसरा सागर हो ऐसा एक सरोवर है ॥ २० ॥

तस्मिन्सरोवरे रम्ये नित्यं ग्राहो भविष्यसि ।
तृषार्तस्तत्र मातंगो गमिष्यति न संशयः ॥ २१ ॥

उस रमणीक सरोवर में तू नित्य ग्राह होगा, वहाँ तृषा से पीड़ित (पियासा) हस्ती जावेगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥

तयोर्मध्ये महद्युद्धं भाविष्यति सुदारुणम् ।
ग्राहेणाकृष्यमाणस्तु गजः स्तोत्रं करिष्यति ॥ २२ ॥

तब उनका महान् घोर युद्ध होगा फिर ग्राह से जल में खींचा हुआ हस्ती स्तुति करेगा ॥ २२ ॥

तदैव देवदेवेशस्तुष्यते नात्र संशयः ।
ततो नारायणः प्रीतः शापतो मोचयिष्यति ॥ २३ ॥

उसी समय देवदेवेश भगवान् प्रसन्न होंगे इसमें सन्देह नहीं। तब प्रसन्न हुए नारायण शाप से छुड़ावेंगे ॥ २३ ॥

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तावृषिणा तेन वरेण तौ प्रमोदितौ ।
एवं परमार्तभूतौ श्रुत्वासीद्भगवानिह ॥ २४ ॥

ऋषि ने ऐसा कहके उस वर से उन गन्धर्वों को प्रसन्न कर दिया। भीष्मजी कहते हैं ऐसे परम पीड़ित इनको सुनके विष्णु भगवान् यहाँ आते भये ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

क्रोधोऽपि वरतुल्योऽयमापदं तं प्रयच्छतु ।
आपाद्विमुक्तौ युगपद्गजो गंधर्व एव च ॥ २५ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं—जो क्रोध भी वर के समान हो उस विपत्ति को करो, विपत्ति से छूटते समय हस्ती और ग्राह ये दोनों गन्धर्व होते भये ॥ २५ ॥

गजोऽपि मुक्ततां यातः श्रीकृष्णेन विमोक्षितः ।
तस्माच्छापाद्विनिर्मुक्तः प्रागिवाविकृतोऽभवत् ॥ २६ ॥

हस्ती भी मुक्ति को प्राप्त भया श्रीकृष्णचन्द्र ने विमोक्ष किया तब उस पाप से छूट पहले की तरह विकाररहित होता भया ॥ २६ ॥

तौ च स्वं स्वं वपुः प्राप्य प्राणिपत्य जनार्दनम् ।
गजो गन्धर्वराजश्च परां निर्वृत्तिमागतौ ॥ २७ ॥

वे दोनों गज, ग्राह अपने २ स्वरूप को प्राप्त होके जनार्दन भगवान् को प्रणाम कर गज और गंधर्वराज दोनों परम आनन्द को प्राप्त होते भये ॥ २७ ॥

प्रीतिमान्पुण्डरीकाक्षः शरणागतवत्सलः ।
अभवत्तत्र देवेशस्ताभ्यां चैव प्रपूजितः ॥ २८ ॥

शरणागतजनों पर दया करने वाले पुण्डरीकाक्ष भगवान् प्रसन्न होते भये, और देवेश विष्णु भगवान् वहीं उन दोनों के द्वारा पूजित होते भये ॥ २८ ॥

इदं चैव महाबाहो देवस्य च प्रभाषितम् ।
भजंतं गजराजानमवदन्मधुसूदनः ॥ २९ ॥

हे महाबाहो ! स्तुति करते हुए हस्तिराज को मधुसूदन भगवान् जो कहते भये विष्णुदेव का कहा हुआ यह वचन है ॥ २९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

यो मां वां च सरश्चैव ग्राहस्य च विदारणम् ।
गुल्मकीचकवेणूनां तं च शैलवरं तथा ॥ ३० ॥

श्रीभगवान् बोले—जो पुरुष मुझको तुम दोनों को सरोवर को ग्राह के मारने को और गुच्छे वायु से बजते हुए बासों के झुण्डों को और उस उत्तम पर्वत को स्मरण करेगा ॥ ३० ॥

अश्वत्थं भास्करं गङ्गां नैमिषारण्यपुष्करम् ।
प्रयागं ब्रह्मतीर्थं च दण्डकारण्यमेव च ॥ ३१ ॥

और पीपलवृक्ष, सूर्य अथवा भास्कर, तीर्थ गङ्गाजी, नैमिषारण्य, पुष्करजी, प्रयाग, ब्रह्मतीर्थ, दण्डकारण्य ॥ ३१ ॥

पुराणं रामचरितं भारताख्यानमुत्तमम् ।
विभूतिं विश्वरूपञ्च स्तवराजमनुस्मृतिम् ॥ ३२ ॥

पुराण, रामचरित्र, महाभारत इतिहास, विभूति, विश्वरूप, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति ॥ ३२ ॥

प्रणवं च कुरुक्षेत्रं गारुडं मेरुपर्वतम् ।
रूपं कांचनगुल्मानां रूपं मेरोः सुतस्य च ॥ ३३ ॥

ओंकार, कुरुक्षेत्र, गरुड़, सुमेरुपर्वत, सुवर्ण के गुच्छों का रूप, सुमेरुपर्वत के पुत्र का (त्रिकूट का) रूप ॥ ३३ ॥

ये स्मरिष्यंति मनुजाः प्रयताः स्थिरबुद्धयः ।
दुःस्वप्नो नश्यते तेषां सुस्वप्नश्च भविष्यति ॥ ३४ ॥

इन सबोंको जो स्थिरबुद्धिवाले जितेन्द्रिय पुरुष स्मरण करेंगे उनका दुःस्वप्न (बुरा सपना) नाश और सुन्दर फल होगा ॥ ३४ ॥

अनिरुद्धं गजं ग्राहं वासुदेवं महाद्युतिम् ।
संकर्षणं महात्मानं प्रद्युम्नं च तथैव च ॥ ३५ ॥

अनिरुद्ध, गज, ग्राह, महाकांतिवाले वासुदेवजी (श्रीकृष्ण), महात्मा बलदेवजी, प्रद्युम्न ॥ ३५ ॥

मत्स्यं कूर्मं च वाराहं वामनं तार्क्ष्यमेव च ।
नारसिंहं च नागेंद्रं सृष्टिसंहारकारकम् ॥ ३६ ॥

मत्स्य, कूर्म, वाराह, वामन, गरुड़, नृसिंह, सृष्टि संहार करनेवाले ॥ ३६ ॥

विश्वरूपं हृषीकेशं गोविन्दं मधुसूदनम् ।
त्रिदशैर्वंदितं देवं [illegible]नूतनम् ॥ ३७ ॥

शेषनागजी, विश्वरूप, हृषीकेश, गोविंद और देवताओं से वंदित, दृढ़ भक्तिवाले अत्युत्तम मधुसूदन देव ॥ ३७ ॥

वैकुण्ठं दुष्टदमनं भक्तिदं मधुसूदनम् ।
एतानि प्रातरुत्थाय संस्मरिष्यंति ये नराः ॥ ३८ ॥

वैकुंठ, दुष्टों को दमन करनेवाले भक्तिदायी मधुसूदन, इनको जो मनुष्य प्रातःकाल उठके स्मरण करेंगे ॥ ३८ ॥

भीष्म उवाच ।

सर्वपापैः प्रमुच्यंते स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ।
एवमुक्त्वा महाराज गजेन्द्रं मधुसूदनः ॥ ३९ ॥

वे सब पापों से छूटते हैं और सब लोकों में प्राप्त होते हैं। भीष्मजी कहते हैं, हे महाराज ! मधुसूदन भगवान् गजेंद्र (हस्ती) को ऐसा कहके ॥ ३९ ॥

स्पर्शयामास हस्तेन गजं गन्धर्वमेव च ।
तौ च स्पृष्टौ ततः सद्यो माल्यांबरधरावुभौ ॥ ४० ॥

अपने हाथ से हस्ती को और गंधर्व को स्पर्श करते भये फिर स्पर्श किये हुए वे दोनों शीघ्र ही उत्तम माला और वस्त्रों को धारण करने वाले (गंधर्व होके) ॥ ४० ॥

तमेव मनसा प्राप्य जग्मतुस्त्रिदशालयम् ।
ततो दिव्यवपुर्भूत्वा हस्तिराट् परमं पदम् ॥ ४१ ॥

उस भगवान् को मन से प्राप्त होके स्वर्ग लोक में प्राप्त होते

भये, फिर वह हस्तिराज दिव्य शरीर धारण करके परम पद को ॥ ४१ ॥

गच्छति स्म महाबाहो नारायणपरायणौ ।
ततो नारायणः श्रीमान्मोक्षयित्वा गजोत्तमम् ॥४२॥

प्राप्त होता भया हे महाबाहो ! ये दोनों नारायण में परायण होते भये तब श्रीमान् नारायण गजोत्तम को छुड़ाके ॥ ४२ ॥

ऋषिभिः स्तूयमानोऽग्र्यैर्वेदगुह्यपदाक्षरैः ।
ततस्तु भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ॥ ४३ ॥

ऋषिलोगों से बहुत उत्तम वेद के गुह्य पदाक्षरों से स्तुत होते भये फिर दुर्विज्ञेय गतिवाले विष्णु भगवान् ॥ ४३ ॥

शंखचक्रगदापाणिरन्तर्धानं युधिष्ठिर ।
गजेन्द्रमोक्षणं दृष्ट्वा सर्वे प्रांजलयस्तदा ॥ ४४ ॥

शंख, चक्र, गदा इनको हाथ में धारण किये हुए ही अन्तर्धान हो गये। हे युधिष्ठिर ! तब सब (ऋषिलोग) गजेंद्र के मोक्ष को देख हाथ जोड़ के ॥ ४४ ॥

ववंदिरे महात्मानं प्रभुं नारायणं परम् ।
विस्मयोत्फुल्लनयनाः प्रजापतिपुरःसराः ॥ ४५ ॥

महात्मा प्रभु परम नारायण को प्रणाम करते भये ब्रह्मा आदि सब देवता, आश्चर्य करके खिले नेत्रों वाले हो गये ॥ ४५ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः ।
प्राप्नुयात्परमां सिद्धिं दुःस्वप्नस्तस्य नश्यति ॥ ४६ ॥

जो मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठके इस स्तोत्र को सुनता है वह परम सिद्धि को प्राप्त होता और उसका बुरा सपना नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
श्रावयेत्प्रातरुत्थाय दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ४७ ॥

यह गजेन्द्रमोक्ष पवित्र है सब पापों को नष्ट करनेवाला है जो प्रातःकाल उठके इसको सुनावे वह दीर्घ (बड़ी) आयु वाला हो ॥ ४७ ॥

श्रुतेन हि कुरुश्रेष्ठ स्तुतेन कथितेन च ।
गजेन्द्रमोक्षणेनैव सद्यः पापात्प्रमुच्यते ॥ ४८ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! गजेन्द्रमोक्ष के सुनने से, स्तुति करने से, कहने से शीघ्र ही पाप दूर होते हैं ॥ ४८ ॥

मया ते कथितं राजन्पवित्रं पापनाशनम् ।
कीर्तयस्व महाबाहो गजेन्द्रस्य महात्मनः ॥ ४९ ॥

हे राजन् ! मैंने पवित्र पापनाशक यह स्तोत्र तेरे आगे कहा, हे महाबाहो ! महात्मा गजेन्द्र के स्तोत्र को कीर्तन करो ॥ ४९ ॥

चरितं पुण्यकर्माणि पुष्कलं वर्द्धते यशः ।
प्रीतिमान्पुण्डरीकाक्षो गजं दुःखात्प्रमुक्तवान् ॥ ५० ॥

यह चरित्र पवित्र कर्म है और बहुत सा यश बढ़ाता है ऐसे प्रीतिमान् हुए पुण्डरीकाक्ष भगवान् गज को दुःख से छुड़ाते भये ॥ ५० ॥

वैशंपायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा महाबाहो भारतानां पितामहात् ।
गजेन्द्रमोक्षणं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५१ ॥

वैशंपायनजी कहते हैं—हे महाबाहो ! (जनमेजय) कुन्ती का पुत्र राजा युधिष्ठिर भीष्म पितामहजी से इस गजेन्द्रमोक्ष को सुनके ॥ ५१ ॥

भ्रातृभिः सहितः सम्यग्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
पूजयामास देवेश पार्श्वस्थं मधुसूदनम् ॥ ५२ ॥

सब भाइयों सहित होके वेद के पारगामी ब्राह्मणों से युक्त होकर समीप में स्थित हुए श्रीकृष्ण भगवान् को पूजता भया ॥ ५२ ॥

विस्मयोत्फुल्लनयनाः श्रुत्वा नागस्य मोक्षणम् ।
ऋषयस्तु महाभागाः सर्वे प्रांजलयस्तदा ॥ ५३ ॥

सब महाभाग ऋषिजन गजेन्द्रमोक्ष को सुन आश्चर्य से प्रफुल्लित नेत्रोंवाले होके हाथ जोड़ के ॥ ५३ ॥

अजं वरेण्यं वरपद्मनाभं महाबलं वेदनिधिं सुरोत्तमम् ।
तं वेदगुह्यं पुरुषं पुराणं विवेदिरे वेदविदांवरिष्ठम् ॥५४॥

अजन्मा, प्रधान पुरुष, उत्तम कमल है नाभि में जिसके ऐसे, महाबली, वेदनिधि, सुरोत्तम उस वेदगुह्य (वेद में गुप्त हुए) वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ पुराण पुरुष को प्रणाम करते भये ॥ ५४ ॥

एतत्पुण्यं महाबाहो जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
दुःस्वप्नदर्शने घोरे श्रुत्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥

हे महाबाहो ! पवित्र कर्मवाले जनों को यह पुण्य पवित्र है (मनुष्य) घोर दुःस्वप्न में इसको सुनके पापों से छूटता है ॥ ५५ ॥

तस्मात्त्वं हि महाराज प्रपद्ये शरणं हरिम् ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः प्राप्स्यसे परमं पदम् ॥ ५६ ॥

हे महाराज ! इस लिये तुम भी हरि की शरण हो फिर सब पापों से छूट के परम पद को प्राप्त होगे ॥ ५६ ॥

यदा महाग्राहगृहीतकातरं
सुपुष्पिते पद्मवने महाद्विपम् ।
विमोक्षयामास गजं जनार्दनः
स्मरामि दुःस्वप्नविनाशनं हरिम् ॥

जब महाग्राह से पकड़े हुए डरते हुए हस्ति को खिले हुए कमल वन में जनार्दन भगवान् छुड़ाते भये (उस समय के रूप वाले) दुःस्वप्न को नष्ट करने वाले हरि को मैं स्मरण करता हूँ ॥ ५७ ॥

परं पुराणं परमं पवित्रं पुराणमीशं सुरलोकनाथम् ।
सुरासुरैरर्चितपादपद्मं सनातनं लोकगुरुं स्मरामि ॥५८॥

परम पुराण, परम पवित्र, पुराण ईश, देवलोक के स्वामी, देवता और दैत्यों से पूजित चरणारविन्द वाले, सनातन लोक के गुरु को मैं स्मरण करता हूँ ॥ ५८ ॥

एतत्पुण्यं महाबाहो जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
दुःस्वप्नदर्शने घोरे श्रुत्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥

हे महाबाहो ! पवित्र कर्मवाले जनों को यह पुण्य पवित्र है (मनुष्य) घोर दुःस्वप्न में इसको सुनके पापों से छूटता है ॥ ५५ ॥

तस्मात्त्वं हि महाराज प्रपद्ये शरणं हरिम् ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः प्राप्स्यसे परमं पदम् ॥ ५६ ॥

हे महाराज ! इस लिये तुम भी हरि की शरण हो फिर सब पापों से छूट के परम पद को प्राप्त होगे ॥ ५६ ॥

यदा महाग्राहगृहीतकातरं
सुपुष्पिते पद्मवने महाद्विपम् ।
विमोक्षयामास गजं जनार्दनः
स्मरामि दुःस्वप्नविनाशनं हरिम् ॥

जब महाग्राह से पकड़े हुए डरते हुए हस्ति को खिले हुए कमल वन में जनार्दन भगवान् छुड़ाते भये (उस समय के रूप वाले) दुःस्वप्न को नष्ट करने वाले हरि को मैं स्मरण करता हूँ ॥ ५७ ॥

परं पुराणं परमं पवित्रं पुराणमीशं सुरलोकनाथम् ।
सुरासुरैरर्चितपादपद्मं सनातनं लोकगुरुं स्मरामि ॥५८॥

परम पुराण, परम पवित्र, पुराण ईश, देवलोक के स्वामी, देवता और दैत्यों से पूजित चरणारविन्द वाले, सनातन लोक के गुरु को मैं स्मरण करता हूँ ॥ ५८ ॥

वरगजशरणाद्विमुक्तिहेतुः
पुरुषवरस्तुतदिव्यदेहगीतम् ।
सततमाभिपठंति ये तु तेषां
सुमरणमंतिकं किल्बिषापहं स्यात् ॥५९॥

उत्तम हस्ती की रक्षा के विमुक्तिहेतु पुरुषोत्तम की स्तुति और दिव्य देह का गीत (ऐसे गजेंद्रमोक्ष स्तोत्र को) जो निरन्तर पढ़ते हैं उनके मरण समय पर्यंत के संपूर्ण पाप नष्ट होते हैं ॥५९॥

धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः ।
क्रतुकुसुमो मोक्षफलो मधुसूदनपादपो जयति ॥ ६० ॥

धर्मरूप दृढ़ बँधे मूलवाले वेदस्कंध वाले पुराणरूपी शाखा-युक्त यज्ञरूपी पुष्पवाले मोक्षरूप फलवाले वृक्षरूप मधुसूदन भगवान् की जय हो ॥ ६० ॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविंदाय नमोनमः ॥ ६१ ॥

ब्रह्मण्यदेव को नमस्कार है जो ब्राह्मणों के हितदायी और जगत् के हितदायी हैं उन श्रीकृष्ण गोविन्द को नमस्कार है ६१

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः ।
संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं
विमुक्तदुःखा सुखिनो भवंति ॥ ६२ ॥

पीड़ित, दुःखित, शिथिल, भयभीत, घोर बीमार (रोगी) ऐसे जन "नारायण" ऐसे शब्दमात्र को कहके दुःखरहित होके सुखी हो जाते हैं ॥ ६२ ॥

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदौ मध्ये तथा चांते हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ६३ ॥

वेद, रामायण, पुराण, महाभारत, इन सब में आदि मध्य अन्त में सब जगह हरि गाये जाते हैं ॥ ६३ ॥

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधाऽवभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥ ६४ ॥

श्रीकृष्ण के अर्थ किया हुआ प्रणाम मात्र दश अश्वमेध यज्ञों के अवभृथ स्नान के समान होता है। दश अश्वमेध यज्ञ करने वाला तो फिर जन्म लेता है परन्तु श्रीकृष्ण को प्रणाम करने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ६४ ॥

सर्वरत्नमयो मेरुः सर्वाश्चर्यमयं नभः ।
सर्वतीर्थमयी गंगा सर्वदेवमयो हरिः ॥ ६५ ॥

सब रत्नमय सुमेरु पर्वत है और सम्पूर्ण आश्चर्यमय आकाश है सब तीर्थमयी गङ्गाजी हैं और सर्वदेवमय हरि हैं ॥ ६५ ॥

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति ॥ ६६ ॥

आकाश से वर्षा हुआ जल जैसे सागर में जाता है वैसे ही सब देवताओं को किया हुआ प्रणाम केशव भगवान् को प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥

गीता सहस्रनामानि स्तवराजो अनुस्मृतिः ।
गजेन्द्रमोक्षणं चैव पंचरत्नानि भारते ॥ १६७ ॥

गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्र-मोक्ष महाभारत में ये पंचरत्न हैं ॥ १६७ ॥

इति गजेन्द्रमोक्ष भाषाटीका समाप्त ॥





हिन्दी-जगत् के चिरपरिचित, 'कर्त्तव्याघात' 'प्रणय' 'देशकीबात' आदि अनेक सम्मानित ग्रन्थों के रचयिता

श्रीदेवनारायण द्विवेदी लिखित

नया मौलिक सामाजिक उपन्यास

पश्चात्ताप

परिचय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि यह पुस्तक हिन्दी के सफल उपन्यासकार की जोरदार कलम से लिखी हुई है। आपके लिखे हुए उपन्यास कितने भावपूर्ण, कितने सरस गम्भीर, कितने प्रभावशाली तथा कितने अधिक हृदय-ग्राही होते हैं, यह हिन्दी-संसार से छिपा नहीं है। आपके लिखे हुए 'कर्त्तव्याघात' और 'प्रणय' इन दो उपन्यासोंने ही साहित्य में क्रान्ति पैदा कर दी है। उच्च कोटि के उपन्यास-प्रेमी जो सज्जन द्विवेदीजी का लिखा हुआ नया उपन्यास पढ़ने के लिए बहुत दिनों से लालायित थे, उन्हें शीघ्रातिशीघ्र आर्डर भेज देना चाहिए। 'पश्चाताप' की माँग देखते हुए कहना पड़ता है कि देरमें आर्डर भेजने वाले सज्जनों को दूसरे संस्करण की राह देखनी पड़ेगी। भावों के उद्यान में विचरण करना हो तो इसे अवश्य पढ़िये। पृष्ठ संख्या लगभग ४०० सुन्दर कागज व छपाई मूल्य १॥)

पता—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस।

देव-दीपिका टीका विभूषिता

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास कृत

विनय पत्रिका

टीकाकार—देवनारायण द्विवेदी

भक्ति-रस का पूर्ण परिपाक जैसा विनय-पत्रिका में है, वैसा और कहीं नहीं। भक्ति में प्रेम तो रहता ही है, उसके साथ आलम्बन के महत्त्व और अपने दैन्य का अनुभव करना भी परम आवश्यक है। इसमें इन दोनों अनुभवों के निर्मल शब्द-श्रोत में अवगाहन करने से मन की मैल कटती है और पवित्र प्रफुल्लता आती है तथा ईश्वर भक्ति की धारा बहाने का सामर्थ्य रखता है। इसकी टीका करने में द्विवेदी जी ने 'प्रसाद' जी सरीखे हिन्दी के धुरंधर विद्वानों की पूरी सहायता ली है।

छपाई सफाई सुंदर, ५०० पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक ग्लेज का मूल्य २॥) रफ का २) है।

पता—भार्गव पुस्तकालय, बनारस।

छप गई ! छप गई !! छप गई !!!

अपेक्षित अनेक विषयों से सुशोभित

श्री तुलसीविवाह पद्धति

सम्पादक--व्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न' पण्डित माधवप्रसाद व्यास ।

सम्मति लेखक-काशी के सुप्रसिद्ध धुरन्धर कर्मकाण्डी श्री पं० विद्याधर जी गौड़ (प्रिन्सिपल हिन्दू यूनिवर्सिटी काशी)

जिसके लिये सभी वर्ग के लोग लालायित थे वही पुस्तक आज बड़े सज धज के साथ बड़े ही सुन्दर टाइप तथा ग्लेज कागज में छपकर प्रकाशित हुई है। इसमें तुलसीविवाह सम्बन्धी तुलसी माहात्म्य, पूजन, व्रत, लक्षप्रदक्षिणा, उद्यापन, विष्णुपूजा, तुलसीपूजा, विष्णुसहस्र-नामावली आदि अनेक विषय सप्रमाण दिये गये हैं। पुस्तक सभी वर्ग के लोगों का अत्यन्त उपकारी है यह मेरा पूर्ण विश्वास है। अतः सनातन धर्मावलम्बी विज्ञजन इस पुस्तक द्वारा अपने कार्य को सफल कर पुस्तक प्रणेता पण्डित को धन्यवाद प्रदान कर उत्साह को बढ़ायेंगे। सर्व साधारण के सुविधा के लिये मूल्य भी लागत मात्र रखा गया है इस पुस्तक को एकबार देखिये तब आपको मालूम होगा कि पण्डितजी ने कितना इसे उपयोगी बनाया है। मूल्य ।।)

पता—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस।

नारद

[लेखक-'चटनी' बनानेवाले 'हास्यरस के अचार' पं० रघुबर दत्त]

आपने नारद के अनेक रूप देखे होंगे, लेकिन ऐसा रूप जैसा इस पुस्तक में है, कभी नहीं देखा होगा। हँसी के मारे आपका पेट दुखने तो लगेगा ही, लेकिन साथ ही आपको यह भी मालूम हो जायगा कि संसार किधर घूम रहा है। पुस्तक में आप देखेंगे कि नारद विष्णु से लड़कर सम्पादक बन जाता है और लगता है देवताओं की पोल खोलने। फिर देखिए, देवताओं के भेजे हुए कामदेव अप्सराओं सहित संसार में क्या रंग जमाते हैं। सिनेमा, उपन्यास-लेखक और कवि आदि 'सज्जनों' पर कैसे व्यंग कसे गये हैं, जरा देखिए तो नारद और देवताओं की कैसी-कैसी शानदार टक्करें होती हैं और किस तरह नारद को विजय होती है, यह तमाशा तो पुस्तक पढ़कर ही मालूम होगा, लेकिन हाँ इतना हम दावे के साथ कह सकते हैं कि 'नारद' पढ़ने पर ब्रह्मलोक के अजीब यंत्र, देवताओं के समाचार पत्र 'ईमानदार की 'ईमानदारी', सुमुख देवता का उर्वशी-प्रेम और झगड़ालू तथा सफाचट सम्पादकों के करिश्मे आपको बिना हँसी से लोट पोट खिलाए नहीं छोड़ेंगे। मूल्य ।।=)

१६६४-३६ पता—भार्गव पुस्तकालय, बनारस।